अमर सेनानी

आयतुल्लाहिलउज़्मा सैय्यिदुलउलमा सै० अली नक़ी नक़वी ताबा सराह
अनुवादकः सैय्यद मुहिब्बुल हसन रिज़वी 'समर' हल्लौरी

मनुष्य को जीवन में पग-पथ पर कठिनाइयों का सामना करना पड़ता है। एक ओर उसे अपने मनुष्यत्त्व की महानता को जीवित रखने के हेतु अपनी इच्छाओं, पाशुविक अन्तःक्षेभों तथा शारीरिक आवश्यकताओं से बुद्धि के नेतृत्व में तथा कर्तव्य पालन के अन्तर्गत युद्ध करना पड़ता है दूसरी ओर सत्यता के मार्ग में जो कठिनाइयाँ उत्तपन्न होती हैं उनके विरोध की आवश्यकता पड़ती है। वातावरण, समय की चाल अत्याचार तथा हिंसा की शक्तियाँ उसको प्रायः उसके मार्ग से हटा देने में बाढ़ के बहाव, आँधियों के जटिल झक्कड़ों और तूफ़ान के हर थपेड़े पर स्थिर रहने, जान पर खेल जाने, सिद्धांतों से बाल भर न हटने की शक्ति हर मानव प्राणी में नहीं होती। दृढ़ प्रतिज्ञा, सहन शक्ति आदि शब्द तो आचार, नीति शास्त्र तथा दर्शन शास्त्र में तो बहुत मिल जायेंगे परन्तु कठिन हालतों तथा कठिन रास्तों में मनुष्य के पग आगे बढ़ाने, साहस को जटिल रखने तथा डगमगाते हुए पैरों में स्थिरता की शक्ति उत्पन्न करने के लिए एक प्रयोगात्मक आदर्श की आवश्यकता है। एक ऐसे पथ प्रदर्शक की आवश्यकता है जो ऐसी कठिन परिस्थितियों, ऐसी सख़्त परीक्षा तथा आपत्तियों की राहों को रौंदते हुए सफ़लता पूर्वक मानवता की चोटी पर खड़ा होकर समस्त संसार को आवाज़ दे रहा हो, "आओ और मेरे पैरों की छाप पर चल कर सत्यता, यथार्थता, ऐश्वर्य तथा सहनशीलता के गौरव को प्राप्त करो।" यह करबला में शहीद होने वाले हुसैन इब्ने अली के जीवन चरित्र की झलकियाँ हैं जो इस पुस्तक में उपस्थित की जा रही हैं।

नाम तथा वंश

हज़रत अबू अब्दिल्लाहिल हुसैन जो रसूल के कुल में के तीसरे इमाम हैं। आप पैग़म्बरे ख़ुदा हज़रत मुहम्मद के नवासे तथा मोमिनों के सरदार हज़रत अली के छोटे पुत्र थे। आपकी माता हज़रत रसूल की वह आदरणीय पुत्री थीं जिनके सम्मान हेतु रसूल स्वयं खड़े हो जाते थे जिनको सभी मुसलमान अभ्रांत स्त्री तथा नेत्री के नाम ये याद करते हैं। और मुसलमान घरों में जिनको हज़रत बीबी जैसे पवित्र नाम से स्मरण किया जाता है। हज़रत का नाम फ़ातिमा ज़हरा था और रसूल ने आपको स्त्रियों की विश्वनेत्री की पदवी दी थी। ऐसे माता पिता के पुत्र और ऐसे नाना के नाती हुसैन थे जिन्हें अध्यात्मिक योग्यतायें माता-पिता तथा नाना से परम्परा रूप में मिली थीं।

जन्म

हिजरत के चौथे वर्ष तीसरी माह शाबान बृहस्पतिवार के दिन इमाम हुसैन अलैहिस्सलाम का शुभ जन्म हुआ। इस शुभ समाचार को सुनकर हज़रत रसूले ख़ुदा[स०] आए, बच्चे को गोद में लिया, प्यार किया, दाहिने कान में अज़ान बाएं कान में अक़ामत कही और अपनी ज़बान मुँह में दे दी। पैग़म्बर की पवित्र जीभ का रस हुसैन का भोजन बना। सातवें दिन अक़ीक़ा (मूंडन) किया गया। आपके जन्म होने से पूरे ख़ानदान में प्रसन्नता का अतीत अनुभव किया गया। परन्तु भविष्यज्ञानी पैग़म्बर के नेत्रों से पानी बरस रहा था। और इसी से रसूल की गृह सम्बन्धियों में हुसैन की भविष्य विपदाओं का वर्णन होने लगा था।

पालन-पोषण

पैग़म्बर की गोद में जहाँ इस्लाम परवान चढ़ रहा था वहीं अब दो बच्चों का पोषण आरम्भ हुआ एक हसन

दूसरे हुसैन और इन सब को परवान चढ़ाने वाली केवल रसूल की गोदी थी एक ओर रसूले इस्लाम जिनके जीवन का लक्ष्य यह था कि मानव नीति की पूर्ति करें दूसरी ओर अली जो अपने कर्तव्य द्वारा अल्लाह की इच्छाओं के ग्राहक बन चुके थे तीसरी ओर हज़रत बीबी फ़ातिमा जो रसूल के रसूलत्व को स्त्री वर्ग तक रच्नात्मक ढंगसे पहुँचाने के लिए ही पैदा हुई थीं, इस प्रकाशमय वातावरण में हुसैन का पालन-पोषण हुआ।

रसूल का प्रेम

हज़रत रसूले खुदा अपने दोनों नातियों से बहुत प्रेम करते थे। सीने पर बिठाते थे। कांधों पर चढ़ाते थे और मुसलमानों को ताकीद करते थे कि इनको प्रेम से रक्खो परन्तु छोटे नवासे के साथ आपका प्रेम कुछ विशेषता के साथ था। ऐसा हुआ कि नमाज़ की दशा में हुसैन आकर पीठ पर बैठ गए हैं और रसूल ने अपने सजदे को लम्बा कर दिया और सजदे से सर न उठाया। कभी भाषण देने में हुसैन मस्जिद के दरवाज़े पर आ गए हैं और गिर गए हैं तो रसूल ने अपने भाषण को रोककर हुसैन को उठाने के लिए मिम्बर (कुर्सी) पर से उतर कर अपने प्रेम का प्रमाण दिया और मुसलमानों को सूचित किया कि "देखो यह हुसैन है। इसे ख़ूब पहचान लो और इसकी महानता को याद रक्खो" रसूल ने हुसैन के लिए यह शब्द भी कहे कि "हुसैन मुझ से है और मैं हुसैन से हूँ" भविष्य ने यह बता दिया कि रसूल के इस कहने का अर्थ यह था कि उनका नाम तथा उद्देश्य दोनों हुसैन की व्यक्तित्व द्वारा संसार में सदैव रहेंगे।

रसूल की मृत्यु के पश्चात्

इमाम हुसैन अलैहिस्सलाम की अभी केवल 6 वर्ष की आयु थी जब अधिक प्रेम करने वाले नाना का देहान्त हो गया। अब पच्चीस वर्ष तक हज़रत अली का एकान्तमय जीवन है। इस काल में विभिन्न प्रकार की परिस्थितियों से इमाम हुसैन को गुज़रना पड़ा और इन्होंने बहुत सी घटनाएं देखीं और अपने पिता के चरित्र को भी देखते रहे। यही वह काल था जब आपने युवावस्था में प्रवेश किया और पूरी जवानी बिताई जब हुसैन की आयु 31 वर्ष की थी तो साधारण मुसलमानों ने हज़रत अली को ख़लीफ़ा मान लिया। यह हज़रत के जीवन के अन्तिम पाँच वर्ष थे जिनमें सिफ़्फ़ीन और नहरवान के युद्ध हुए और इमाम हुसैन ने इनमें अपने आदरणीय तथा सम्मानपूर्ण पिता की सहायता के हेतु भाग लिया और अपनी वीरता को सिद्ध भी किया। सन् 40 हिजरी में हज़रत अली मस्जिदे कूफ़ा में शहीद हुए और अब इमामत और ख़िलाफ़त के अधिकार इमाम हसन की ओर गए जो इमाम हुसैन के बड़े भाई थे। हुसैन ने एक वफ़ादार तथा कर्तव्य को जानने वाले भाई के समान इमाम हसन का साथ दिया। और जब इमाम हसन ने उन शर्तों के साथ जिनसे इस्लाम का लक्ष्य सुरक्षित रह सके, मुआविया से संधि कर ली तो इमाम हुसैन भी इस सन्धि पर राज़ी हो गए। और शांतिमय जीवन व्यतीत करने लगे। दस वर्ष तक इमाम हसन अलैहिस्सलाम के जीवन में तथा दस वर्ष उनकी मृत्यु के पश्चात आपने शांत तथा एकांत का जीवन व्यतीत किया और पूजा तथा इस्लाम धर्म के प्रचार को अपना धेय बना लिया परन्तु मुआविया ने उन शर्तों को जो इमाम हसन के साथ की थीं बिल्कुल पूरा न किया। स्वयं इमाम हसन अलैहिस्सलाम को शाम के शासक की राय से विष दिया गया। हज़रत अली आत्मज अबी तालिब के शीओं को चुन-चुन कर क़ैद किया गया। सिर काटे गए और सूली पर चढ़ाया गया। और अन्त में इस शर्त के बिल्कुल विपरीत कि शाम का शासक अपने मरने के बाद के लिए किसी दूसरे शासक को नामज़द न करेगा, मुआविया ने यज़ीद को (जो उसका पुत्र था) अपने बाद राज्य का उत्तराधिकारी घोषित कर दिया। और सब मुसलमानों से शक्ति द्वारा उसकी अधीनता स्वीकार करने के लिए प्रयत्न किये गए। और शक्ति तथा धन के बल पर इस्लामी संसार के बड़े भाग को उसका आधीन बना ही लिया गया।

गुण तथा आचार

इमाम हुसैन अलैहिस्सलाम तीसरे इमाम थे, पवित्र तथा अभ्रान्त की मूर्ति थे। आपकी पूजा, पवित्रता, दान आदि गुणों को शत्रु, मित्र सभी मानते थे। रात-दिन में एक हज़ार रकात नमाज़ पढ़ते थे। और प्रायः रोज़ा

रखते थे। आपने पच्चीस हज पैदल किए। आपकी दान परिवृति तथा वीरता बाल्य काल से इतनी स्पष्ट थीं कि स्वयं रसूलुल्लाह ने कहा "हुसैन में मेरी दान परिवृति तथा वीरता दोनों सम्मिलित हैं अतेव आप के द्वार पर यात्री तथा आवश्यकता रखने वाले लोग सदा आते रहते थे। और कोई प्रश्न करने (मांगने) वाला लौटाया नहीं जाता था इस कारण आपकी पदवी "अबुल मसाकीन" अर्थात् दीनों का पिता था। रातों को रोटी तथा खजूर के बोरे पीठ पर लाद कर ले जाते थे और दीन दुखियों तथा विध्वाओं को पहुँचाते थे जिनके निशान पीठ पर पड़ गए थे। आप सदा कहते थे "जब किसी आवश्यकता रखने वाले व्यक्ति ने तुम्हारे आगे हाथ फैला दिया तो इसका अर्थ यह हुआ कि उसने अपने सम्मान को विक्रय कर दिया। उसको ख़ाली हाथ न लौटाओ कम से कम अपने ही आत्मिक सम्मान का ध्यान करो"।

गुलामों तथा कनीज़ों के साथ अपने रिश्तेदारों जैसा व्यवहार करते थे। ज़रा सी बात पर उन्हें स्वतंत्र कर देते थे। आपकी विद्या की महानता के समक्ष पूरे संसार का सिर झुका हुआ था। धार्मिक समस्याओं तथा महत्वपूर्ण बातों में लोग आपकी ओर आर्कषित होते थे। आपकी प्रार्थनाओं का एक संग्रह, लिखित रूप से सहीफ़-ए-हुसैनिया नामक पुस्तक में आज भी मौजूद है। आप इतने करुणाई थे कि शत्रुओं पर भी उनकी विपदा में उन पर दया करते थे और इतने दयालु थे कि अपनी आवश्यकताओं को छोड़ दूसरों की आवश्यकताओं को पूरा करते थे। इन सब गुणों के साथ-साथ आप बहुत सादी तबीयत के थे यहाँ तक कि कुछ भिखारियों ने जो अपनी भीख (माँगी हुई भोजन वस्तु) खा रहे थे उन्होंने एक बार आप से खाने को कहा। आप तुरन्त ज़मीन पर बैठ गए किन्तु खाया नहीं। इस लिए नहीं खाया कि रसूल के घर वालों को भिक्षा का माल खाना न चाहिए। परन्तु उन भिखारियों के साथ बैठने में आपको कोई इनकार न था।

इस नम्रता की अपेक्षा आपकी महानता का यह प्रभाव था कि जिस जन-समूह में आप होते वहाँ लोग आँख उठाकर बात न करते थे। जो लोग आपके वंश के विद्रोही थे वह भी आपकी महानता को मानते थे। अतेव हज़रत इमाम हुसैन ने शाम के शासक मुआविया को एक कड़ा पत्र लिखा। मुआविया इस पत्र से क्रोधित हुआ और उसके साथियों ने कहा कि आप भी ऐसा ही कड़ा पत्र लिखिये। मुआविया ने कहा यदि जो कुछ मैं लिखूँ वह अगर ग़लत हो तो उससे कोई लाभ नहीं और यदि सही और ठीक लिखना चाहूँ तो अल्लाह की सौगंध मुझे हुसैन में ढूंढने से कोई त्रुटि नहीं मिलती।

आपकी आचार शक्ति, सत्यता, यर्थाता, वीरता, कर्तव्य पालन, कार्य करने की शक्ति, सहनशीलता, दया के उदाहरण आपके उस जीवन में सुरक्षित हैं जो आप ने करबला के मैदान में दस दिन गुज़ारे। इन सब बातों के साथ-साथ आपकी शान में परिवृति के प्रदर्शन का यह हाल था कि अंतिम समय तक शत्रु से सन्धि करने का प्रयत्न करते रहे। किन्तु आपकी दृढ़ प्रतिज्ञा वह थी कि जान देदी परन्तु उस सत्य मार्ग से जिसको पहले दिन चुना था उससे एक इंच भी पीछे न हटे। उन्होंने एक पुत्र समान पिता की आज्ञा का पालन किया। छोटे भाई के रूप में बड़े भाई की आज्ञानुसार कार्य किया और करबला में एक नेता एवं सरदार के समान पूरे मित्रगण के नेत्रत्व का कार्य पूरा किया। इस प्रकार यह कार्य किये कि आज्ञापालन के समय महत्तम आज्ञाकारी सिद्ध हुए और सरदारी के समय महत्तम नेता भी सिद्ध हुए।

करबला की दुर्घटना

हज़रत इमाम हसन अलैहिस्सलाम से और शाम के शासक मुआविया आत्मज अबुसुफ़यान से जो सन्धि हुई थी उसकी एक मुख्य तथा महत्वपूर्ण शर्त यह थी कि मुआविया को अपने मरने के पश्चात् किसी उत्तराधिकारी की नियुक्ति का अधिकार न होगा। परन्तु सब शर्तों को उसने ठुकराते हुए इस शर्त का भी उल्लंघन किया और अपने पुत्र यज़ीद को अपने बाद के लिए नामज़द किया बल्कि अपने जीवन में ही अपने पुत्र यज़ीद को ख़लीफ़ा घोषित करके उसकी आधीनता को समस्त इस्लामी देशों के निवासियों से स्वीकार कराने के लिए हर देश में भ्रमण किया और लोगों से आधीनता की स्वीकृति प्राप्त कर ली। उस समय हज़रत इमाम हुसैन ने आधीनता से बिल्कुल

इनकार कर दिया। शाम के शासक ने आपके मत को प्राप्त करने का हर प्रकार प्रयत्न किया परन्तु असफलता प्राप्त हुई। केवल यज़ीद का ख़लीफ़ा होना सिद्धान्त के आधार पर ठीक न था बल्कि वह चरित्रहीन तथा आधार के लिहाज़ से गिरा हुआ एवं तुक्ष व्यक्ति था कि ऐसे व्यक्ति का इस्लामी सिंहासन पर बैठना इस्लाम के नियमों के लिए अति हानिकारक था। वह शराबी, बदकार और ऐसे नैतिक अप्राधों का कर्ता था जिनका वर्णन भी सम्यता तथा सज्जनता के विरुद्ध है। इस पर उसकी हट थी कि वह इमाम हुसैन को आधीन बनाए। इसका खुला हुआ अर्थ यह था कि वह अपने बुरे कार्यों को ठीक सिद्ध करने के लिए पैग़म्बरे इस्लाम[स०] के नाती से प्रमाणित कराना चाहता था।

मुआविया के मरने के पश्चात् जब यज़ीद राज्य सिंहासन पर बैठा तो सर्वप्रथम उसको यही चिन्ता हुई कि इमाम हुसैन अलैहिस्सलाम को बुलाकर उनसे आधीनता की स्वीकृति प्राप्त की जाए। उसने अपने राज्यपाल को जो मदीने में था, मुआविया की मृत्यु का समाचार लिखते हुए हुसैन[अ०] से आधीनता स्वीकृति की इच्छा को प्रकट करते एक पत्र लिखा। वलीद ने जो उस समय मदीने का राज्यपाल था इमाम हुसैन अलैहिस्सलाम को बुलाकर यज़ीद का संदेश दिया। हुसैन इस बात का निर्णय पहले ही से कर चुके थे आपके लिए यज़ीद की आधीनता का स्वीकार करना कदापि सम्भव नहीं है। और आधीनता को स्वीकार न करने की परिस्थिति में जो परिणाम होने वाला था उसे भी आप भलिभांति जानते थे किन्तु अल्लाह के धर्म की रक्षा एवं इस्लामी नियमों तथा सिद्धांतों के हेतु आप सब कुछ सहन करने को तैयार थे। आपने वलीद को उचित उत्तर देकर अपने सम्मान पूर्ण गृह (काबा, मक्का) को प्रस्थान किया। इस घटना के पश्चात मदीने में ठहरना अनुचित जानते हुए किसी दूसरे स्थान पर चले जाने का दृढ़ प्रण कर लिया।

अतः आपने सन् 60 हिजरी रजब के महीने की तिथि 28 को नाना का देश छोड़कर अत्याचारियों तथा हत्यारों के अपराध एवं अत्याचार से विवश होकर विदेश यात्रा पर जाने का निर्णय कर लिया। (महान) मक्का नगर अन्तर्राष्ट्रीय विधान तथा इस्लामी शिक्षा अन्तर्गत शरण स्थान माना जाता था। आप ने मक्के में एक शरणार्थी के रूप में शरण लिया। आपके साथ आपके निकट सम्बन्धी थे जिनमें रसूल के कुल की आदरणीय महिलाएं तथा छोटे-छोटे बच्चे भी थे। आप अपनी ओर से किसी प्रकार के रक्त प्रवाह (ख़ूँरेज़ी) एवं युद्ध का प्रयत्न नहीं कर रहे थे। हज क्रिया का समय भी क़रीब आ रहा था और हज़रत इमाम हुसैन की हार्दिक इच्छा भी थी कि इस वर्ष काबा गृह का हज अवश्य करें यदि मक्के में रहने पायें परन्तु ऐसी परिस्थितियां उत्पन्न हो गई कि वह महान व्यक्ति जिसने पच्चीस हज पैदल किए थे, इस समय मक्के में होते हुए भी हज क्रिया की पूर्ति से वंचित रह गया। शाम के अत्याचारी राज्य की ओर से लोग हाजियों की वेशभूषा में भेजे गए थे और उनको यह आदेश दिया गया था कि वह जिस परिस्थिति में भी हों अवसर मिलने पर इमाम हुसैन की हत्या कर डालें।

हज़रत इमाम हुसैन यह न चाहते थे कि आपके कारण मक्के में रक्तप्रवाह हो और काबा गृह का सम्मान भ्रष्ट हो। दो रोज़ हज में शेष रह गए जब आप अपने सब सम्बन्धियों रिश्तेदारों के साथ मक्का से चल दिए। अब आप कहाँ जाते। कूफ़ा निवासी निरन्तर पत्र भेजा करते थे कि आप यहाँ आएं और हमारा धर्म पथ प्रदर्शन करें कि आप मक्के से निकलने पर मजबूर हो चुके थे, तो अब केवल कूफ़ा ही वह स्थान था जिसकी ओर आप जा सकते थे। यहाँ की परिस्थिति को देखने के लिए आप अपने चचाज़ाद भाई हज़रत मुस्लिम आत्मज अक़ील को भेज चुके थे। आप ज़िलहिज्जा को मक्के से कूफ़े जाने के इरादे से चल दिए, परन्तु यही वह समय था जब कूफ़े में क्रांति हो चुकी थी। शुरु में तो कूफ़े के लोगों ने हज़रत मुस्लिम का स्वागत किया और 18,000 आदमियों ने अधीनता स्वीकार की, परन्तु जब यज़ीद को इस बात का पता चला तो उसने कूफ़े के हाकिम नोमान आत्मज बशीर को उसके स्थान से हटा कर ज़ियाद के पुत्र (इब्ने ज़ियाद) को कूफ़े का हाकिम नियुक्त किया।

यह व्यक्ति बहुत ही अपराधी एवं अत्याचारी और हिंसक था। उसने कूफ़े में आकर बड़े-बड़े आदेश

दिये। सभी कूफ़ा निवासी भयभीत हो गए और उन्होंने मुस्लिम का साथ छोड़ दिया और अन्त में अकेले हज़ारों आदमियों का मुक़ाबला करने के पश्चात बड़ी निर्दयता तथा अत्यचार के साथ 9 ज़िलहिज्जा को आप शहीद कर डाले गए। हज़रत इमाम हुसैन अलैहिस्सलाम इराक़ के रास्ते में ज़बाला के स्थान पर थे जब हज़रत मुस्लिम की मृत्यु का समाचार उनको मिला इसका हज़रत पर बड़ा प्रभाव पड़ा किन्तु प्रतिज्ञा तथा प्रण में ज़रा भी अन्तर न आया। प्रस्थान करने का भी कोई अवसर न था। यात्रा जारी रही यहाँ तक कि ज़ूहस्म के स्थान पर इब्ने ज़ियाद की सेना में एक हज़ार का समूह हुर के नेतृत्व में हज़रत इमाम हुसैन का रास्ता रोकने के लिए पहुँच गया। यह शत्रुदल था, किन्तु हज़रत इमाम हुसैन अलैहिस्सलाम ने इनके साथ दया तथा करूणा का वह प्रदर्शन किया जो मानव जगत में यादगार रहेगा। समस्त सेना को प्यासा देखकर जितना पानी था सब पिला दिया और उन रास्तों में जहाँ पानी मिलना कठिन था अपने घर वालों तथा छोटे-छोटे बच्चों की प्यास के ध्यान से पानी किसी मात्रा में सुरक्षित न रखा। इसके बाद भी यज़ीद की सेना ने अपने हाकिम की आज्ञानुसार आपके साथ हिंसात्मक व्यवहार किया। आपको आगे बढ़ने या प्रस्थान करने से रोक दिया। अब सन् 61 हिजरी का पहला महीना शुरु हो गया था। दूसरी मोहर्रम को हज़रत इमाम हुसैन करबला की भूमि पर पहुँचे और यहीं उतरने पर मजबूर हो गए। दूसरे दिन से यज़ीद की टिड्डी दल सेना करबला के युद्धस्थल में आना आरम्भ हो गई और तमाम रास्ते बन्द कर दिए गए। इमाम हुसैन अलैहिस्सलाम के साथ केवल बहत्तर जान निछावर करने वाले थे और उधर हज़ारों की सेना थी।

सात दिन तक शांति स्थापित रखने के लिए सन्धि का प्रयत्न होता रहा। हज़रत यहाँ तक तैयार हुए कि अरब का देश छोड़ दें किसी दूसरे दूर स्थान पर चले जाएं और इस प्रकार अपने को यज़ीद के अधीन स्वीकार न करते हुए भी ऐसी सूरत पैदा कर दें कि युद्ध की आवश्यकता न उपस्थित हो। परन्तु नवीं मुहर्रम को तीसरे पहर सन्धि की सम्भावना समाप्त हो गई। इब्ने ज़ियाद के इस पत्र से जो शिम्र के हाथ उमरे साद के पास भेजा गया उसमें लिखा था ''या हुसैन को विवश कर दो कि वह बिना किसी शर्त के अधीनता स्वीकार करें या उनसे युद्ध किया जाय'' इस पत्र के पहुँचते ही यज़ीदी सेना ने आक्रमण कर दिया।

इसकी अपेक्षा कि सातवीं मुहर्रम से पानी बन्द हो चुका था, इमाम हुसैन अलैहिस्सलाम के समक्ष उनके घर वाले और छोटे बच्चों की व्याकुलता के दृश्य, प्यास की आवाज़ें और भविष्य की सब परिस्थितियाँ थीं, परन्तु यज़ीद की आधीनता का स्वीकार करना अब भी उसी प्रकार असम्भव था जिस प्रकार कि उसके पूर्व था। निस्सन्देह आपने यह इच्छा की कि एक रात का अवकाश मिल जाए। आप यह चाहते थे कि यह रात पूरी की पूरी अन्तिम बार अल्लाह की पूजा में गुज़ारें इसके अतिरिक्त शत्रु व मित्र दोनों को युद्ध करने के लिए अपने-अपने कार्यक्रम पर सोचने का अवसर प्राप्त हो जाए। आपने अपने साथियों को इकट्ठा करके भाषण भी दिया आपने कहा, ''कल बलिदान दिवस है। इन अत्याचारियों को मुझ से शत्रुता है। क्या आवश्यकता है कि तुम भी मेरे साथ अपने जीवन को भी ख़तरे में डालो। मैं तुम पर से अपनी अधीनता का भार हटाए लेता हूँ। इस रात के पर्दे में जिधर चाहो चले जाओ'' परन्तु इन वीर प्राण देने वालों ने एक साथ मिलकर कहा ''हम आपका साथ कदापि नहीं छोड़ेंगे''।

आशूर (दशमी) की रात समाप्त हुई, दसवीं मुहर्रम को प्रातःकाल से लेकर थोड़े दिन तक इन वीर साथियों ने जो कुछ कहा कर दिखाया और उन्होंने इस वफ़ादारी, दृढ़ प्रतिज्ञा तथा वीरता पूर्वक हज़रत इमाम हुसैन की सहायता में शत्रु से युद्ध किया जो इतिहास के पन्नों में सदा स्वर्ण शब्दों में लिखा जाएगा। इन बहादुर हुसैनी साथियों में हबीब इब्ने मज़ाहिर, मुस्लिम इब्ने औसजा, सुवैद इब्ने उमर, अनस इब्ने हारिस और अब्दुर्रहमान इब्ने अब्दे रब ऐसे साठ, सत्तर और अस्सी वर्ष के बुड्ढे और बहुत से रसूल के साथी भी थे, बुरैर हमदानी, कनाना इब्ने अतीक़ तग़लबी, नाफ़े इब्ने हिलाल, हनज़ला इब्ने असअद ऐसे क़ुरान को ज़बानी याद रखने

वाले बहुत से पूजा करने वाले, रात भर प्रार्थना करने वाले और बहुत से अनुपम वीर थे जिनकी वीरता के कर्तव्य लोगों को स्मर्ण थे।

जब सहायकों में कोई बाक़ी न रहा तो रिश्तेदारों की बारी आई सब से प्रथम इमाम ने अपने जवान पुत्र हज़रत अली अकबर को जो हू-बहू रसूल से मिलते जुलते थे उनको मरने के लिए भेज दिया। हज़रत अली अकबर ने जिहाद किया और अपने प्राण अल्लाह के धर्म पर निछावर कर दिए। आपको रसूल के इस चित्र के मिट जाने का अत्याधिक शोक अवश्य हुआ परन्तु आपके साहस कर्तव्यपालन तथा प्रतिज्ञा एवं प्रण में किसी प्रकार की हीनता नहीं हुई। अक़ील के पुत्र अब्दुल्लाह इब्ने जाफ़र के पुत्र एक-एक करके सब ने विदा ली और मौत का प्याला पिया। इमाम हसन के पुत्र क़ासिम ने जब विदा ली और युद्ध की आज्ञा चाही तो इमाम हुसैन को बड़ा क्षोभ हुआ परन्तु अपने भाई इमाम हसन की वसीयत को दृष्टि में रखते हुए आपने उनको भी आज्ञा दे ही दी।

सबसे आख़िर में हज़रत अली के पुत्र हज़रत अब्बास युद्ध स्थल में गए। जब कोई न रह गया तो सेनापति स्वयं गया। हाशिम गौत्र का यह चाँद अब्बास जिसको इमाम हुसैन किसी प्रकार जिहाद करने की आज्ञा नहीं दे रहे थे क्योंकि उनके कांधों पर इस्लाम का ध्वज लहरा रहा था। परन्तु अन्त में एक जिहाद करने और साहस और उत्साह दूसरे छोटे-छोटे बच्चों की प्यास। अब्बास पानी लेने के लिए एक मश्क अपने साथ लेकर इमाम हुसैन की आज्ञा लेकर फ़ुरात नदी की ओर चले उन्होंने अलम (ध्वजा) की रक्षा भी की, दुश्मनों से लड़े भी फ़ौज को हटाकर नहर (फ़ुरात) तक पहुँचने के लिए रास्ता भी साफ़ किया और मश्क में पानी भी भर लिया परन्तु इसका शोक कि वह पानी हुसैन के पड़ाव तक न पहुँचने पाया था कि वीर ध्वजाधारी अब्बास के दोनों बाहु शत्रुदल के कठोर व्यक्ति ने तलवार से काट दिये। मश्क को भी एक तीर लगाकर छेद दिया। और पानी ज़मीन पर बह गया। अब्बास कीशक्ति का अन्त हो चुका था कि सर पर एक गुर्ज़ पड़ा जिसके कारण अब्बास पृथ्वी की ओर झुके और हुसैन की संक्षिप्त सेना की ध्वजा हज़रत अब्बास के साथ पृथ्वी पर आ रही। हुसैन की कमर टूट गई, पीठ झुक गई परन्तु साहस में किसी प्रकार की कमी उस समय भी न आई। अब जिहाद के मैदान में हुसैन के अतिरिक्त कोई भी नहीं दिखाई देता था। परन्तु शहीदों की सूची में एक अनुपम शहीद का नाम बाक़ी था जिसका अद्वितीय बलिदान इतिहास में न पहले देखा गया न बाद में देखे जाने की कोई आशा है। यह छः महीने का बच्चा अली असग़र था। जो झूले में प्यास के कारण मर रहा था। हुसैन ख़ेमे के द्वार पर आए और इस बच्चे को माँगा। बच्चे की प्यासमय दशा को देखा। निस्संदेह यह दृश्य मनुष्य के हृदय को हिला देने वाला था परन्तु कितने कठोर तथा कितने नीच थे सीरिया की सेना वाले कि उन्होंने इस बच्चे पर दया न की इसको पानी की एक बूँद भी न दी और पानी माँगने के उत्तर में बच्चे के कोमल कन्ठ पर हुरमुला दुष्ट ने एक ऐसा तीर मारा कि बच्चा बाप (हुसैन) के हाथों पर शहीद हो गया। इमाम हुसैन ने यह अन्तिम बलिदान भी अल्लाह के दरबार में प्रस्तुत कर दिया।

इसके बाद स्वयं रण-क्षेत्र में पधारे और इस अकेलेपन, मुसाफ़िरत तथा सब प्रकार के क्षोभों के सहन के पश्चात जब कि अवश्य तीन दिन के भूखे-प्यासे थे दिन भर मित्रों तथा रिश्तेदारों की लाशें उठाई थीं, सीने पर 72 आदमियों के मरने का दाग़ था। भाई के क्षोभ में कमर टूट चुकी थी, पुत्रों के मरने से कलेजे घाव हो चुके थे, परन्तु जब इस्लाम की रक्षा के हेतु तलवार निकाली तो संसार को हमज़ा, जाफ़र की शान तथा हज़रत अली की वीरता दिखा दी। आख़िर कुरबानी का समय आ गया, शरीर पर शत्रुओं के तीर, तलवार आदि शस्त्रों द्वारा इतने घाव हो चुके थे तथा ख़ून के बहने से शरीर में बिल्कुल शक्ति न रह गई थी। आप घोड़े पर संभलने के योग्य नहीं रहे। शत्रुओं ने कष्ट देने में कोई कोई कसर न छोड़ी। शिम्र नामक कठोर नीच तथा कायर ने पीड़ित हुसैन के गले को ख़ंजर से काट लिया हुसैन का सिर क्या कटा रसूल की गर्दन पर छुरी फेर दी गई। और नाम मात्र को इस्लाम का कलमा पढ़ने वालों ने पैग़म्बरे इस्लाम के नाती के सिर को नेज़े पर ऊँचा

उठाया, डेरों, ख़ेमों में आग लगा दी। रसूल के सम्मान पूर्ण घराने की पवित्र महिलाओं के सिर से उनकी चादरें उतार ली गईं। शहीदों के लाशे घोड़ों की टापों से रौंद डाले गए।

इमाम हुसैन के मरने के पश्चात मर्दो में केवल हुसैन के एक रोगी पुत्र जिनका नाम हज़रत सज्जाद था बाक़ी बचे थे। जिनको तौक़ और जंजीर पहनाकर बन्दी बनाया गया स्त्रियों तथा बच्चों को भी क़ैद किया गया और फिर इन सबको नगरों-नगरों फिराया गया करबला से कूफ़ा और कूफ़ा से सीरिया एक क़ैदी के रूप में यह रसूले ख़ुदा के घर वाले अपराधियों द्वारा ले जाए गए। इब्ने ज़ियाद तथा यज़ीद के दरबारों में खड़े किये गए इन सब बातों का संक्षिप्त वर्णन बाद वाली पुस्तिका में जिसमें हज़रत सैय्यदे सज्जाद की जीवन कथा है मिलेगा।

इन नाम मात्र मुसलमानों ने पैग़म्बरे ख़ुदा के नाती हुसैन को कफ़न भी न दिया आसपास बनी असद गोत्र के लोग बसे हुए थे उन्होंने शहादत के तीसरे दिन अर्थात 12 मुहर्रम को इन अपराधियों के चले जाने के पश्चात हुसैन को दफ़्न किया।

आज करबला में हुसैन का रौज़ा बड़े वैभव के साथ समस्त संसार की दृष्टि को अपनी ओर आकर्षित कर रहा है और हुसैन के नाम का ताज़िया अलम और दूसरे प्रदर्शन आज भी संसार के हर स्थान पर मिलते हैं। हुसैन संसार में अमर हैं और उनके कारण इस्लाम बाक़ी है, सत्यता, तथार्थता, ईश्वर पूजा, स्वतंत्रता के लिए इमाम हुसैन की शहादत का उदाहरण मानवता के इतिहास में अनुपम रूप से सदा शेष रहेगा।

यदि करबला की घटना से संसार कुछ सीख ले और जो कार्य हुसैन ने करबला में किया उसका अनुकरण करने की चेष्टा करें तो जीवन के लक्षण पूरे राष्ट्र में प्रकट होने लगें।

हम में यही त्रुटि है कि हम महान उद्देश्यों के सामने अपने क्षणिक लाभ अपने आराम अपने जीवन अपनी रिश्तेदारियों तथा संतान एवं न जाने कितनी रूपहली, सुनहरी वस्तुओं का पक्ष करते हैं।

इमाम हुसैन ने यह उदाहरण उपस्थित किया कि तुम ऊँचे उद्देश्यों के लिए अपना सब कुछ बलिदान करने को तैयार रहो। धन्य है वह व्यक्ति जो हुसैन के बलिदान से पाठ लेकर अपने को प्रयोगात्मक ढंग से पेश करे जैसा हुसैन संसार को बनाना चाहते थे। □□□

शेष... मानवता के शहीद

उस सर को यज़ीदी फ़ौज को देने से मना कर दिया तो फ़ौज के सिपाहियों ने उन युवा बालकों को क़त्ल कर डाला। फ़ौज के चले जाने के पश्चात बूढ़े ब्राहम्ण ने अपने बालकों के सर और धड़ जोड़कर इमाम की बारगाह में विनती की कि मेरे बच्चे आपके ही प्रेम में मारे डाले गए आप ही उन्हें दोबारा जीवन दीजिए। कहा जाता है कि बालक जीवित हो गए मगर उनकी गर्दनों पर निशान बने रहे और उस परिवार की पीढ़ी दर पीढ़ी पर यह निशान उनकी सन्तानों की गर्दन पर पाए जाते हैं इन्हीं लोगों को हुसैनी ब्राहमण कहा जाता है।

वास्तविक्ता यह है कि हिन्दुस्तान में इमाम हुसैन और उनके साथियों की यादगार जिस प्रकार मनाई जाती है दूसरे किसी देश में इस प्रकार से शायद ही मनाई जाती हो। इस तथ्य से यह बात स्वतः स्पष्ट हो जाती है कि हिन्दुस्तानियों को इमाम हुसैन[अ०] के प्रति विशेष श्रद्धा है। हर वर्ष मुहर्रम में हम सभी हिन्दुस्तानी बिना धर्म और जाति के भेदभाव के उस महान शहीद को श्रद्धांजलि आर्पित करते हुए अपने सर उसकी बारगाह में झुकाते हैं जिसने मानवीय मूल्यों को जीवित रखने के लिए अपना सर कटा दिया।

(इमामिया मिशन प्रकाशन न० 199 मार्च 1971)